सौन्दर्यशास्त्र के विकास में प्रो0 रेवाप्रसाद द्विवेदी का योगदान

* सन्त प्रकाश तिवारी

सौन्दर्यशास्त्र का स्वरूप –

सौन्दर्यशास्त्र के लक्षण, स्वरूप एवं उनकी व्याख्या के सन्दर्भ में म0म0 प्रो0 रेवाप्रसाद द्विवेदी का कथन है – जिस विशेषता को सौन्दर्य शब्द से प्रकाशित किया जाता है अथवा जिसके द्वारा चित्त को आनन्द की अनुभूति होती है, वह सहज या तो वस्तु का गुण होता है अथवा उस वस्तु की विशिष्टता होती है, जो किसी विशेष अब संघटनाओं में विद्यमान होती है

सौन्दर्यमिति शब्देन यो विशेषः प्रकाश्यते।
अंगसंघटनानिष्ठा जाति रेषा गुणोऽथवा।।[1]

विचारकों का एक वर्ग सौन्दर्य की वस्तुगत या रूपगत सत्ता का प्रतिपादन करता है। इनके अनुसार सौन्दर्य वस्तु का गुण है और वह रूप आकार में निहित रहता है। 19वीं शती के पूर्वार्द्ध में हरबर्ट नामक दार्शनिक ने कहा था – सौन्दर्य अपने अतिरिक्त किसी अन्य तत्व का प्रतीक नहीं है – अपने रूप के अतिरिक्त उसका कोई अर्थ नहीं हैं।[2] वस्तु के रूप – आकार की रचना, अनुक्रम, अनुपात, सममिति, समन्विति, वर्ण – योजना, दीप्ति आदि तत्वों से होती है। यही सौन्दर्य के तत्त्व हैं।

रूप–सौन्दर्य –

रूपवादी विचारक सौन्दर्य की सत्ता वस्तु की संरचना में ही मानते हैं।[3] सौन्दर्य के द्वारा ही ध्यान आकर्षित होता है तथा चित्त में एकाग्रता आती है। जिस एकाग्रता के परिणाम स्वरूप ही किसी कार्य में पूर्ण रूप से प्रवृत्त होने की क्षमता आती है। इस सौन्दर्य के परिणाम स्वरूप ही समाधि की स्थिति उत्पन्न होती है। इस प्रकार से यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि को साधन बनाते हुए समाधि की चरम स्थिति तक पहुंचा जाता है। समाधि

* शोधच्छात्र संस्कृत तथा प्राकृत भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

की यह स्थिति भी कालविजयिनी कला ही है–

यमिनां नियमाऽऽसनाऽसु– रोधैः करणव्यवहारभूमिकातः।
चरमः प्रतिपद्यते समाधिर्ननु यत् सापि कलैव कालजेत्री ।।[4]

सौन्दर्य की यह स्थिति स्वतः अपनी तरफ आकृष्ट कर लेती है, जब सिद्ध योगी भी अपने वश में न रहकर उस अवयव – संघटना की ओर आकृष्ट हो जाते हैं।

भाव–सौन्दर्य –

द्विवेदी जी सौन्दर्य को अनुमान का विषय मानते हुए कहते हैं– सौन्दर्य का केवल अनुमान हो सकता है और इस अनुमान में हेतु (साधन) बनता है केवल प्रत्याहार। प्रत्याहाररूपी फल से ही हेतु तत्त्व भी सिद्ध होता है, अर्थात् जब तक प्रत्याहार नहीं होगा तब तक सौन्दर्य की अनुभूति या अनुमिति हो ही नहीं सकती है–

प्रत्याहारो हि सौन्दर्यानुमितौ लिंगमेकलम्।
लिंगत्वमप्यदस्तस्य फलेनैव प्रसाध्यते।।[5]

सौन्दर्यशास्त्र अनुमान का विशय होने के कारण इसका स्वलक्षण ही बन सकता है। आचार्य गोविन्दचन्द्र पाण्डेय सौन्दर्य को अतुलनीय और अनिर्वाच्य बताकर एक प्रकार से उसक 'स्वलक्षण' जैसा होना बतलाते हैं।[6] आचार्य आनन्दवर्धन ने ''ध्वन्यालोक'' में इसे प्रतीयमान अर्थ के रूप में ग्रहण किया है और प्रतीयमान वस्तु की सत्ता का प्रतिपादन वहाँ दृष्टान्त द्वारा किया गया है–

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु।।[7]

इसी प्रकार सौन्दर्य का केवल तटस्थ लक्षण ही किया जा सकता है। सौन्दर्य का जो स्वरूप अथवा धर्म होता है वह विलक्षण होता है उसका लक्षण तथा स्वरूप सम्भव नहीं हो पाता है। यथा–

तटस्थं लक्षणं त्वस्य बहुधा क्रियतान्तमाम्।
स्वरूपं यत्तु सौन्दर्ये लक्षितुं तन्न शक्यते।।[8]

प्राकृतिक—सौन्दर्य –

द्विवेदी जी सौन्दर्य की वस्तुनिष्ठता को प्रमाणित करते हुए प्राकृतिक वर्णन में शिशिर और मधुमास की चर्चा करते है। उनका कथन है कि मधुमास और शिशिरऋतु का सन्धिकाल बहुत अधिक मीठा (सुखद) है, क्योंकि इसमें चारों तरफ सुरभित पवन (मलयानिल) बिखर उठता है। इसके विपरीत ग्रीष्म ऋतु अत्यन्त दुःखद लगती है, क्योंकि इसमें चारों तरफ धूल उड़ती है जिसमें आँखों के सामने की वस्तुओं को देख पाना भी कठिन लगता है। यह वस्तुओं का स्वगत वैशिष्ट्य है जिससे भौतिक द्रव्यों में परस्पर अन्तर प्रतीत होता है। जिसके कारण एक वस्तु अत्यन्त प्रिय लगती है तथा दूसरी अप्रिय। क्योंकि इसमें सौन्दर्यरूपी संस्कार विद्यमान रहता है— इसी कारण अटलांटिक महासागर की अपेक्षा प्रशान्त महासागर अधिक प्रिय (सुन्दर) लगता है—

मधुः शिशिरसंप्लुतः पवनसौरभं भावयन् नितान्तमधुरः कथं कथमहो शुचिर्भीषणः।
समुद्धतरजः पटे न खलु तत्र दृष्टिः क्षमा भवत्यभिमुखागतेष्वपि हि वस्तुषु प्रेखितुम्।।[9]

नाट्यानुशासन में भी द्विवेदी जी प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रकृति को देखिए, यह नटी बनकर निरन्तर घूमती ही रहती है। इसके घूमने में कितने ही अवयव हो सकते हैं। किन्तु इनका जो सेव्य है वह तो एक ही हुआ करता है—

प्रकृतिः पुरूषाय यन्नटीत्वं प्रपिपद्याऽनिशमेव चङ्क्रमीति।
क्रमणेऽवयवा भवेयुरस्मिन् बहवः किन्तु न नैषु सेव्य एकः।।[10]

सौन्दर्यानुभूति हेतु विषय एवं विषयी की आवश्यकता –

"सौन्दर्य की सृष्टि के लिए दो की आवश्यकता होती है : विषयी और विषय, किन्तु विषय और प्रमाता द्वारा उसकी प्रतीति एक दूसरे से पृथक नहीं रहते। सौन्दर्यशास्त्र की दृष्टि से पदार्थ का अर्थ है उस का वह रूप जो परमात्मा द्वारा भावित होता है— वह रूप जो उसकी भावना को

प्रतिव्यक्त करता है।[11] सौन्दर्य न तो पूर्णतः प्रमाता की चेतना में रहता है और न पदार्थ में। उसकी सत्ता वस्तुतः दोनों के संवाद में है। सौन्दर्य का मूल तत्त्व रूप है जो एक अमूर्त रेखाचित्र या अभिकल्प मात्र न होकर भावित पदार्थ के विषय में किसी विशेष सिद्धान्त (या भावना) की अभिव्यक्ति होती है। कला के क्षेत्र में रूप का अर्थ होता है, मूर्त प्रतिरूपण सादृश्य जो प्रमाता को ज्ञानेन्द्रियों तथा चेतना का एक साथ अनुरणन करता है। इसी दृष्टि से संेटायन ने सौन्दर्य को एक ओर आत्मा की प्रकृति 'समानुरूपता' और दूसरी ओर 'विषयीकृत आषद' कहा है।[12] सौन्दर्यपंचाशिका के अनुसार सौन्दर्य जहाँ एक ओर प्रमाता का स्वागतधर्म है, वहीं दूसरी ओर वस्तुगतधर्म भी है। यथा–

सौन्दर्यमित्थं स्वगतं प्रमातुः प्रमेयगं चापि विभाव्यते ज्ञैः।
सौन्दर्यगंगातटयुग्ममेतन्मेयं च मातारमथो श्रितास्ति।।[13]

यह सौन्दर्य प्रमेय तट पर भी प्राप्त होता है और प्रमाता तट पर भी प्राप्त होता है परन्तु जब दोनों सुलभ हो जाते हैं, तो सौन्दर्य की अधिकाधिक अनुभूति होने लगती है।

सौन्दर्य सभी प्रकार की कलाओं में भी विद्यमान रहता है। के0 एस0 रामस्वामी शास्त्री का मत है– "Æsthetics is the science of beauty as expressed in art."[14] डॉ0 कान्ति चन्द्र पाण्डेय ने भी क्रोच और हेगेल के विचारों में समन्वय स्थापित करते हुए कहा है– "……the word 'Æsthetics' stands for science and Philosophy of find art."[15] कला जीवन के अन्तर रूप से जुड़ी हुई है। वह जीवन के उन्नत आयामों को ही अपने माध्यम से व्यक्त करती है। 'हेगेल कला को ही उच्चतम सौन्दर्य के रूप में प्रतिष्ठित करते हैं, क्योंकि वह चेतना की क्रिया है। यह क्रिया किसी प्रयोजन का साधन नहीं है। कला धर्म और दर्शन के साथ, परमसत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है, इसलिए कला एक स्वतंत्र प्रक्रिया है। वह प्रत्यय को मूर्तरूप में प्रस्तुत करने की दिशा में अग्रसर होती है और परम प्रत्यय के विकास में महत्वपूर्ण बिन्दु है।[16] कला को आनन्द और

मनोरंजन का साधन बताया गया है।

काव्यात्मक सौन्दर्य की महत्ता –

द्विवेदी जी अपनी भावयित्री प्रतिभा के माध्यम से काव्य सौन्दर्य तथा कला सौन्दर्य की तुलना करते हैं और काव्य सौन्दर्य की श्रेष्ठता को प्रतिपादित करते हुए कहते हैं कि, कलाओं में सौन्दर्य सदैव एक–सा रहता है तथा काव्य में नित्य नवीन परिवर्तन होता रहता है। इसमें माता शारदा नृत्य सी करती हुई प्रतीत होती हैं। इसीलिए हमारे आचार्यों ने कवि की सृष्टि को विधाता की सृष्टि से भी उत्कृष्ट माना है और इस प्रकार कवि की सामर्थ्य को ब्रह्मा की सामर्थ्य से अधिक महत्त्व प्रदान किया है, जैसा कि 'काव्य प्रकाश' में आचार्य मम्मट की उक्ति है–

नियतिकृतनियमरहितां ह्लादैकमयीमनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति ।।[17]

कला के सौन्दर्य में सदैव एकरूपता रहती है। वह अपरिवर्तनीय होती है, किन्तु काव्य जगत में नायिका के मुख में कमल की सुगन्ध, उसकी आँखों में कमल का सौन्दर्य और उसके शरीर में कमल की कोमलता रहती है। काव्य जगत् में चन्द्रमा की शीतल चाँदनी और मेघों की मन्द ध्वनि से भी विरहिणियों के लिए आग की लपटें निकलती हुई दिखलायी देती हैं। इसके विपरीत कला में ऐसा कुछ भी सम्भव नहीं है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य ने कवि की स्वयं प्रजापति या ब्रह्मा और काव्य संसार को उसकी सृष्टि कहा है–

अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते।।[18]

इस अनन्त काव्य जगत् का निर्माता कवि ही एक प्रजापति (ब्रह्मा) है। उसे जैसे भी रोचक (रमणीय) लगता है। वह काव्य जगत् को उसी प्रकार बदल देता है। कला में कोई अद्भुत परिवर्तन अथवा अद्भुत दृश्य सामने उपस्थित नहीं होता है जबकि काव्य में पत्थरों में भी हृदय तथा अश्रुधारा का वर्णन किया गया है। उत्तररामचरित में सीता के वियोग में श्री

राम को रोते हुए देखकर पत्थर भी आँसू गिराते हैं और बज्र का भी हृदय विदीर्ण हो जाता है–

जनस्थाने शून्ये विकलकरणैरार्थचरितै–
रपि ग्रावा रोदित्यापि दलित वज्रस्य हृदयम्।।[19]

इस काव्य के करुण रुदन में भी हम आनन्द का अनुभव करते हैं। उस आनन्दातिरेक से द्रवीभूत होकर नेत्रों से भी अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती है। काव्य जगत् में रुदन एवं क्रन्दन से भरा हुआ करुणरस भी आनन्दानुभूतिस्वरूप ही है–

करूणादावपि रसे जायते यत् परं सुखम्।
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम्।।[20]

इस कथन को द्विवेदी जी निम्न कारिका के माध्यम से व्यक्त करते हैं–

काव्ये तु शारदामाता नृत्यन्तीव विभाव्यते।
गत्वरत्वमिहैवास्ति भावनां नित्यसन्ततम्।
चित्रमूर्त्यादिषु त्वेषा गतिर्नैव विभाव्यते।
तत्र यद् यादृशं तद्धि तादृगेव हि तिष्ठति।।[21]

काव्य में जो अर्थ होता है, वह शब्द शक्ति के माहात्म्य से प्रतिक्षण परिणाम लिए रहता है। "चेतन आत्मा में शब्द उस संस्कार को समाविष्ट कर देता है जो अर्थ रूप में परिणत होता है।"

जिस प्रकार चन्द्रमा से अनेक किरणें निकलती है, वे मन को आनन्दित करने वाली होती हैं। उसी प्रकार से काव्य के द्वारा जितने भी अर्थ निकलते हैं उनमें नित्य नवीनता तथा रमणीयता पायी जाती है। काव्य में एक ही भाव में अनेक रूप पाये जाते हैं। काव्य में एक ही दृश्य में समस्त सौन्दर्य सामने उपस्थित हो जाते हैं, जबकि मूर्तिकला और चित्रकला में ऐसा नहीं हो सकता है। अतः काव्य सौन्दर्य सर्वोत्कृष्ट है।

सन्दर्भ –

1. सौन्दर्यपंचाशिका श्लोक सं0 1
2. ए हिस्ट्री ऑफ एस्थेटिक्स पृ0 सं0 513

3. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका पृ0 सं0 23
4. नाट्यानुशासनम् 4/36
5. सौन्दर्यपंचाशिका श्लोक सं0 5
6. स्वलक्षणं नाम जात्यादिरहितम्।
7. ध्वन्यालोक 1/4
8. सौन्दर्यपंचाशिका श्लोक सं0 6
9. सौन्दर्यपंचाशिका श्लोक सं0 13
10. नाट्यानुशासन 4/41
11. The Theory of Beauty. Page no. 162
12. भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका पृ0 सं0 26
13. सौन्दर्यपंचाशिका श्लोक सं0 15
14. Indian Æsthetics Srirangam page no. 1
15. Comprative Æsthetics. Vol. 1 Page no. XV
16. साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र पृ0 सं0 46
17. काव्यप्रकाश 1/1
18. ध्वन्यालोक पृ0 सं0 549
19. उत्तररामचरितम् 1/28
20. साहित्यदर्पण 3/4
21. सौन्दर्यपंचाशिका श्लोक सं0 19–20